Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

"महाभारत में शान्ति पर्व का महत्त्व"

डॉ प्रियनाथ सिंह
प्राचीन इतिहास विभाग
डॉ० रामप्रसन्न मणिराम सिंह पी०जी० कॉलेज
सरायरासी अयोध्या (फैजाबाद) उ०प्र०
Mo. :- 7080378057
Email id :- priynathsingh@gmail.com

"महाभारत में शान्ति पर्व का महत्त्व"

महाभारत भारतीय संस्कृति धर्म तथा राजनीतिक विश्वकोष कहा जाता है। वैसेतो महाभारत के लगभग सम्पूर्ण पर्वों में यत्र-तत्र विभिन्नै प्रसंगों के माध्यम सेराजनीतिक चिन्तन का विचार प्रवाह दर्शित होता है किन्तु राजनैतिक चिन्तन केअध्ययन के दृष्टि से शान्ति पर्व का जो महत्त्व हैं वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है।शान्ति पर्व के अन्तर्गत महाभारत के युद्ध के उपरान्त जिस प्रकार की स्थिति का निर्माणहुआ उसमें करणीय और अकरणीय विषय पर न््याायोचित ढंग से विचार आये है।युधिष्ठिर में वैराग्य का भाव जागृत होता है वे राजधर्म से पलायन कर मुनिवृति की ओर अग्रसर होते दिखाई देते हैं। इस सन्दर्भ में शान्ति पर्व का वह प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है जहाँ युधिष्ठिर ने अपना मंतव्य प्रकट किया है- युधिष्ठिर अपने भाई कर्ण तथा मरे हुए पुत्र-पौत्र, सम्बन्धी तथा सुहृदों को याद करके शोक विकल हो जाते हैं और वे प्रायश्चित के लिए समस्त संग्रह सम्पूर्ण राज्य तथा सुखभोग का त्याग कर ममता शोक से रहित होकर जंगल में मुनिवृति से रहकर ज्ञानापार्जन करने का विचार प्रकट करते हैं। अर्जुन उसका विरोध करते हैं और युधिष्ठिर को समझाते हैं कि आपका धर्म राजधर्म का पालन करना है और राजधर्म का पालन धन से होता है , धन में सभी गुण हैं धन के द्वारा ही इह लोक , परलोक की प्राप्ति सम्भव है। जिस प्रकार प्राचीन काल में दिलीप, नृग, नहुष, अम्बरीष और मान्धाता ने अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। अतः उन्हीं राजाओं की भाँति आप भी सर्व स्वदक्षिण नामक द्रव्यमय यज्ञ करके सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण कीजिए | क्षत्रियों के लिए यही सनातन मार्ग है। यही अभ्युदय का पथ है।

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

युधिष्ठिर भीम का राज्य के प्रति आसक्ति देखकर उनसे असंतोष , प्रमाद मद , राग अशान्ति, बलमोह, अभिमान तथा उद्वेग इन पापों को छोड़ने तथा बन्धन मुक्त होकर शान्त एवम् सुखी जीवन व्यतीत करने को कहते हैं। युधिष्ठिर राजा और मुनि में मुनि को ही श्रेष्ठ बताते हैं। क्योंकि उन्होंने नरक पर विजय प्राप्त की है वे कहते है कि महर्षि गण तप ब्रह्मचर्य तथा स्वाध्याय के बल पर ऐसे राज्य में पहुँच जाते हैं , जहाँ मृत्यु का प्रवेश नहीं है। युधिष्ठिर राजा जनक का उदाहरण देकर कहते है कि राजा जनक समस्त इन्द्रों से रहित और जीवनमुक्त पुरुष थे उन्हें मोक्ष स्वरूप आत्मा का साक्षात्कार हो गया था। राजा जनक का प्रसंग आने पर अर्जुन युधिष्ठिर को जनक के सन्दर्भ में उस प्रसंग की याद दिलाते है। जब राजा जनक ने भी राज्य का परित्याग करके भीख मांगने का निश्चय किया था उस समय उनकी रानी ने राजा जनक के निश्चय को राजधर्म के विरुद्ध बताया क्योंकि राजा की प्रजा का पालन करता है।

अर्जुन के द्वारा जनक के दृष्टान्त प्रस्तुत करने पर भी युधिष्ठिर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वे त्याग और तप की ओर ही प्रवृत्ति दिखाई देते हैं। महर्षि व्यास राजा हयग्रीव का उदाहरण देते हुए राजकाज में संलग्न रहते हुए युधिष्ठिर को प्रजा पालन के लिए उत्साहित करते हैं। इस प्रसंग में महर्षि व्यास ने राजधर्म की शिक्षा दी है। यह अवस्था ठीक वैसे हीं ज्ञात होती है जैसे महाभारत के युद्ध के प्रारम्भ में अर्जुन अपने राजधर्म को स्मृत कर युद्ध धर्म से विमुख दिखाई देता है और फिर कृष्ण अर्जुन को कर्मणतः का उपदेश देते है। ठीक उसी प्रकार से युधिष्ठिर की स्थिति महाभारत के युद्ध के पंरिसमाप्ति के बाद दिखाई देती है।

धर्मराज युधिष्ठिर को अपने बंधु बान्धवों के शोक में निमग्न देख अर्जुन ने श्री कृष्ण से आग्रह किया कि युधिष्ठिर को समझाये। कृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाते हुए कहा कि जो युद्ध में मारे गये हैं वे उत्तम गति को प्राप्त हो चुके हैं उनके लिए शोक मत करो। कृष्ण ने युधिष्ठिर के समक्ष शिव , भरत, श्रीराम, भागीरथी, दिलीप, मान्धाता, चित्ररथ आदि राजाओं का दृष्टान्त प्रस्तुत किया और उन्हें प्रेरित किया कि पैतृक सिंहासन आंसीन होकर शासन कार्य का संचालन करो। इसके पश्चात् बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान करके अपने अभीष्ट लोक को प्राप्त कर लोगे।

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

शान्ति पर्व में ही युधिष्ठिर के उपर्युक्त मनोदशा के प्रसंग में व्यास ने राजा युधिष्ठिर को जिस प्रकार से राजधर्म का उपदेश दिया है वह राजनीतिक चिन्तन का अप्रतिम उदाहरण कहा जा सकता है।

राजधर्म की श्रेष्ठता

राजधर्म का अर्थ राजा का धर्म है। धार्मिक मान्यता के अनुसार क्षत्रिय को ही राजा होना उचित है, प्रजा की रक्षा और प्रजा का पालन राजा का उख्य धर्म है , ये क्षत्रियों के ही कर्त्तव्य है, पुरुष सूकत में क्षत्रियों के लिए 'राजन्यः शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षत्रियों का वर्ग एक प्रकार के राजाओं का समूह (राजन्य) ही है, पराक्रम और रक्षा के द्वारा प्रत्येक क्षत्रिय राजधर्म का ही पालन करता है और वह राजन्य पद का अधिकारी है, अतः व्यापक और सामान्य अर्थ में क्षत्रिय और राजा एक दूसरे के पर्याय के समान है | किन्तु विशेष अर्थ में दोनों में कुछ भेद किया जा सकता है। राजा क्षत्रियों के सम्पूर्ण वर्ग का प्रतिनिधि होता है और वह एक भूखण्ड का शासक होता है। सामान्य क्षत्रिय धर्म के अतिरक्त उसके कुछ विशेष धर्म होते हैं। रक्षा और युद्ध की व्यवस्था एवं उनका नेतृत्व राजा का प्रमुख धर्म है। राजपद और राजधर्म की इसी विशेषता की दृष्टि से राजधर्म का पृथक वर्णन किया है। शासन , न्याय, दण्ड, युद्ध प्रजा पालन आदि राजा के मुख्य धर्म है। महाभारत राजाओं का चरित है। अत: उसमें राजधर्म और राजनीति का विशद् वर्णन मिलता है। राजधर्म को क्षत्रिय धर्म का ही विशेष रूप मान सकते हैं। राजा के द्वारा राजधर्म के ऊपर ही प्रजा के सभी वर्गों का धर्मपालन निर्भर करता है। क्षत्रियों का सामान्य धर्मपालन भी राजधर्म पर ही अवलम्बित है। अतः राजधर्म सभी धर्मों में श्रेष्ठ है। वह समाज के धर्म प्रसाद की नींव है प्रजातन्त्र के शासन में भी राजधर्म का महत्त्व अक्षुण्ण रहता है। प्रजा के प्र तिनिधि होते हुए भी शासकों में प्रजा पालन , धर्माचरण राजनीति आदि के गुण अपेक्षित होते है। शासन का संचालन राजधर्म के अनुसार ही होता है। अन्तर केवल इतना है कि राजतन्त्र की परम्परा में राजा वंश परम्परा के शासन का अधिकारी होता है और प्रजातन्त्र में वह जनमत से चुना जाता है |

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

महाभारत राजाओं का चरित है। अतः राजघर्म की श्रेष्ठा और राजाओं के कर्त्तव्य का उसमें विशद् वर्णन मिलना स्वाभाविक है। उतथ्य ने राजा मान्धाता से कंहा कि राजा की उपमा सब प्रकार से हजार नेत्रों वाले इन्द्र से दी जाती है। अतः राजा जिस धम्र को भली-भाँति समझ कर निश्चित कर देता है, वहीं श्रेष्ठ धर्म माना गया है

राजा को इन्द्र के समान हजार नेत्र वाला इसलिए कहा गया है कि वह भी अपने देश के समस्त हजारों कार्यों को स्वयं देखता है तथा स्वयं करता है। श्रेष्ठ राजा वही कहलाता है जो प्रजा तथा देश के समस्त सुखों-दुःखों को देखता है। राजधर्म ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है। क्योंकि अन्य सब धर्म इसी धर्म के आश्रय में पलते तथा बढ़ते हैं यदि राजधर्म हमारा उचित धर्म का पालन नहीं करेगा तो देश के अन्य सब धर्म भी शिथिल पड़ जायेंगे और अपने धर्म से विचलित होने लगेंगे। राजधर्म की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो तीनों वेद रसातल को चले जाये और वेदों के नष्ट होने से समाज में प्रचलित हुए सारे धर्म का नाश हो जाय। पुरातन राजधर्म जिसे शास्त्र धर्म भी कहते हैं, यदि लुप्त हो जाय तो आश्रम के सम्पूर्ण धर्मों का ही लोप हो जायेगा |

चारों आश्रमों के धर्म तथा चारों वर्णों के धर्म सब राजधर्म पर ही आश्रित रहते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम राजा की नीति के ऊपर ही रहता है , क्योंकि ब्रह्मचारी बालक ब्राह्मण के यहाँ आकर पढ़ते हैं तथा शहर से भिक्षा प्राप्त करके अपना उदर पालन करते हैं। यदि राजा धर्मात्मा होगा तब तो सम्पूर्ण प्रजा भी धर्मात्मा होगी और इन ब्रह्मचारियों को भिक्षा देकर उनका ब्रह्मचर्याश्रम सफल करेगी | ब्राह्मण भी उन ब्रह्मचारियों को ज्ञान की तथा विद्या की शिक्षा तभी दे सकेगा जब राजा की ओर से उसके मन में श्रद्धा आदर तथा धर्मपरायणता का भाव होगा। जंगत में हिंसक पशुओं से रक्षा का भार भी राजा पर ही होता है। यदि राजा ब्राह्मणों की रक्षा की सुविधा का ध्यान रखेगा, तभी ब्राह्मण शिष्यों को उचित शिक्षा का ज्ञान करा सकता था, उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में रहने वालों मनुष्यों को अन्य तीनों आश्रमों के लोगों का ध्यान रखना पड़ता है। अन्य तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ तथा संन्यास गृहस्थाश्रम के आश्रम में ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। यदि राजा धर्मात्मा तथा दयावान होगा , तभी गृहस्थाश्रम में रहने वाली प्रजा भी

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

धर्मात्मा और दयावान होगी और अन्य तीनों आश्रम के जीवन-निर्वाह का ध्यान रखेगी। इसलिए राजधर्म ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

राजा के धर्म में सम्पूर्ण त्याग का दर्शन बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि "राजा के धर्मों में सारे त्यागों का दर्शन होता है , राजधर्म में सारी दिशाओं का प्रतिपादन हो जाता है। राजधर्म में सम्पूर्ण विधाओं का संयोग सुलभ है तथा राजपधर्म में सम्पूर्ण लोकों का समावेश हो जाता है।

राजा का जीवन दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए होता है। जब तक राजा त्यागी नहीं होगा। तब उसे दूसरों के दुःख-सुख का मान भी नहीं होगा। इसलिए राजा का जीवन त्यागपूर्ण होता था। राजा सम्पूर्ण विधाओं का ज्ञाता होता था और इसी ज्ञान के कारण वह सम्पूर्ण विधाओं जैसे वाण विधा, कला की विधा आदि का आदर-सम्मान करता था। राजा इन सभी विधाओं की उन्नति का प्रबन्ध करता था और श्रेष्ठ कलाकार को पुरस्कृत करके उसके उत्साह को बढ़ाता था। राजा को अपने लोक की तो चिन्ता रहती थी, उसे परलोक के लिए भी उत्तम कार्य करने की चिन्ता रहती थी। इसलिए राज्य को सुखी करता ही था और पुण्य कर्मों द्वारा स्वर्ग प्राप्ति का भी प्रयत्न करता

था। उत्तम कर्म करने से राजा को चारों आश्रमों का फल भी प्राप्त होता था। इसके विषय में कहते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि "जो राजा पूजनीय पुरुषों को उनकी अभीष्ठ वस्तुएं देकर सम्मानित करता है, उसे ब्रह्मचारियों को प्राप्त होने वाली गति मिलती है।

ब्रह्मचारी पुरुष को तो जीवन भर लोगों की चीजों को त्यागकर् जो फल प्राप्त होता है राजा को वह पुण्यफल पूजनीयों को अभीष्ठ वस्तुओं को देकर तथा उन्हें सम्मानित करते प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार गृहस्थ के फल का वर्णन करते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि "जो तत्त्ज्ञान, सर्व त्याग, इन्द्रिय संयम तथा प्राणियों पर अनुग्रह करना जानता है तथा जिसका पहले कहे अनुसार उत्तम आचार-विचार है , धीर पुरुष को कल्याणमय गृहस्थाश्रम से मिलने वाले फल की प्राप्ति होती है गृहस्थ लोग बड़े त्याग, दया तथा सदाचार से अपना जीवन व्यतीत करके जिस

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

पुण्य फल को प्राप्त कर सकते हैं राजा लोग उसी पुण्यफल को तत्त्वज्ञान, सर्वत्याग, इन्द्रिय संयम और प्राणियों पर दया करके प्राप्त कर लेता है। राजा का धर्म बहुत कठिन है। इसलिए उसको इन अच्छे कर्मों के करने से उत्तम आश्रमों के फल की प्राप्ति हो जाती है। इतनी लक्ष्मी के अधिकारी होने पर भी जिस राजा को अहंभाव नहीं होता है उसे ही इन आश्रमों का पुण्य फल प्राप्त होता है। राजा को वानप्रस्थाश्रम में रहने वाले पुरुष का पुण्य फल कैसे मिलता है , यह पूछने पर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि जो नित्यप्रति सन्धयावन्दन आदि नित्यकर्म, पितृश्राद्ध, भूतयज्ञ, मनुष्य यज्ञ (अतिथि-सेवा) इन सबका अनुष्ठान प्रचुरमात्रा में करता रहता हैं. उसे वानप्रस्थाश्रम के सेवन से मिलने वाले पुण्य फल की प्राप्ति होती है जो राजा संकट में पडे हुए अपने सजातियों सम्बन्धियों ओर सुहृदों का उद्धार करता है उसे भी वानप्रस्थ आश्रम द्वारा मिलने वाले फलों की प्राप्ति होती है। जो राजा जगत के श्रेष्ठ पुरुषों और आश्रमियों का निरन्तर सत्कार करता है तथा बलिवश्वदेव के द्वारा प्राणियों को उनका भाग समर्पित करता हैं , शिष्ट पुरुषों की रक्षा के लिए अपने शत्रु के राष्ट्रों को कुचल डालता है , उसे वानप्रस्थ आश्रम के प्राप्त होने वाला पुण्य मिलता है। जिस वानप्रस्थ आश्रम में मनुष्य पच्चीस वर्षों तक लगातार रहकर दुःख उठाता हुआ रहता है तथा उसका जो फल उसे कठोर तपस्या से प्राप्त होता है , वह फल राजा को अपने कर्त्तव्य पालन करने से प्राप्त हो जाते हैं। यह राजधर्म की श्रेष्ठता का ही फल है। इसी प्रकार संन्यास आश्रम से प्राप्त होने वाले फल की प्राप्ति के विषय में भीष्म ने युधिष्ठिर को बताया कि चारों आश्रमों का पालन करने वाले सदाचार-परायण पुरुषों को जिन फलों की प्राप्ति होती है, वे ही फल राग-द्वेष छोड़कर दण्डनीति के अनुसार बर्ताव करने वाले राजा को भी प्राप्त होते हैं। यदि राजा:सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखने वाला है तो उसे संन्यासियों को प्राप्त होने वाली गति प्राप्त होती है।"

समस्त प्राणियों के पालन तथा अपने राष्ट्र की रक्षा करने से राजा को नाना प्रकार के यज्ञों की दीक्षा लेने का पुण्य प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय करता है। क्षमाभाव रखता है, आचार्य की पूजा करता है, इष्ट मन्त्र का जप और देवताओं का सदा पूजन करता है, जो

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

राजा युद्ध में प्राणों की बाजी लमाकर निश्चय के साथ शत्रुओं का सामना करते-करते मर जाता है जो सदा समस्त प्राणियों के प्रति माया और कुलशित से रहित यथार्थ व्यवहार करता है , उसे संन्यास आश्रम से प्राप्त होने वाला पुण्य फल प्राप्त होता है।

युगों का प्रवर्तक भी राजा ही होता है , ऐसा धर्मशास्त्रों का कथन है , महाभारत में भी कुन्ती ने श्रीकृष्ण से कहा है कि "अपने सत्कर्मों द्वारा सत्ययुग उपस्थित करने के कारण राजां को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है त्रेता की प्रवृत्ति करने से भी उसे स्वर्ग प्राप्ति होती है किन्तु वह अक्षय नहीं होता मा मतलब यही है कि राजा जैसी नीति वाला होगा उसकी प्रजा भी वैसे ही आचरण वाली हो जाती है। इसीलिए राजा को युग का प्रवर्तक कहते हैं। यदि राजा सद्गुणों वाला होगा तो उसकी प्रजा भी सद्गुणों वाली होगी और उस राजा का समय सतयुग जैसा कहलायेगा। सदगुणों से राजा देश में ऐसी नीति रखेगा, जिससे शहर में चोर, डाकू आदि दुष्ट लोगों की कठोर दण्ड से समाप्ति हो जाये तो सब लोग सदगुणों वाले ही रहेंगे और देश में सुख-शान्ति रहेगी। कहते हैं कि चन्द्रगुप्त के राज्य में लोग घरों में ताले भी नहीं लगाते थे और सबनिश्चित तथा निर्भय होकर सोते थे। किसी को चोरी का डर नहीं था। उस राज्य में सबको सतयुग ही लगता होगा। ऐसे-ऐसे कठोर नीति वाले राजा हुए हैं, जिन्होंने चोर,

डाकुओं को तथा ऐसे ही बुरे आचरण वाले मनुष्यों को फाँसी कमरे में न देकर सड़क पर पेड़ों पप लटका कर दिलवाई थी, जिससे उनकी दुर्गति को समस्त राहगीर देखें और उससे समझें कि बुरे काम करने से क्याी होगा। इस डर के कारण बहुत से लोगतो स्वयं ही सुधर जायेंगे और देश में शान्ति बनी रहेगी। राजा को युग का स्रष्टा

कहना उचित ही है- "यथा राजा तथा प्रजा" वाली कहावत सही ही लगती है। जिस-जिस देश में अवनति हुई है, उस देश का इतिहास जानने से ज्ञात होता है कि उस देश का राजा स्वयं ऐसा ही था, जो कुछ न तो देश की उन्नसति कर सका औरन प्रजा को सुख-शान्ति दे सका।

इसके पूर्व कहा गया है कि यदि दण्ड नीति न रहे तो वर्ग का नाश हो जाये। धर्म रह ही न सके और समाज की स्थिति ही सम्भव न रहे।

Airo International Research Journal
Peer Reviewed Multidisciplinary Indexed Journal
ISSN: 2320-3714
Volume:23 Issue:1 October 2020

मज्जेत् त्रयी दण्डनीतौ हतायां

सर्वे धर्मा: प्रक्षयेयुर्विवुद्धा:।

महाभारत के शान्तिपर्व में एक दृष्टि से सम्पूर्ण जीवलोक का अन्तिम आश्रम राजधर्म में ही स्वीकार किया गया है।

सर्वस्य जीवलोकस्य राजघर्म परावणम्।

इन कतिपय संदर्भो से ही परिलक्षित होता है कि राजनीतिक चिन्तन .पर शोध की दृष्टि महाभारत का शान्तिपर्व स्वयं में एक महत्त्वपूर्ण पर्व है। इसके अन्तर्गत राजशास्त्र विषयक चिन्तन की सुदीर्धघ परम्परा का संकेत भी प्राप्त होता है। यहाँ छिटपुट अनेक पर्ववर्ती राजशास्त्र प्रणताओं के नाम उल्लिखित मिलते है जो इनकी पुष्टि करते है जैसे विशालाक्ष, इन्द्र, वृहस्पति, मनु, शुक्र, भारद्वाज, गौराशिरा, मातारिश्वा देवगण, उतध्य, वामदेव, शम्बर, कालक वृधीय, वसुहोम और कामन्तक | इनमें से कतिपय नाम कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी उल्लिखित है।

महाभारत के शान्तिपर्व में राजनीतिक चिन्तन को मात्र पीठिका का विवेचन नहीं है अपितु राजनीतिक चिन्तन का सैद्धान्तिक एवं अनुभव बन्ध व्यावहारिक पक्ष भी प्रस्तुत किया गया है। शान्ति पर्व के सिद्धान्त एकांकी चिन्तन नहीं | बल्कि राजनीतिक चिन्तन सम्बन्धी युधिष्ठिर की शंकाएं और जिज्ञासाएं भी हैं जिसका समाधान भीष्म द्वारा प्रश्नोत्तर पद्धति से उदाहरणों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है।

1 **सहत्त्राक्षेण राजा हि सर्वरवोपमीयते |**
स पश्यति च यं धर्म सः धर्म: पुरुषर्षभ ||
शान्तिपर्व- अध्याय 94, श्लोक- 45

2 **मज्जेत् त्रयी दण्ड नीतौ हतायां**
सर्वे धर्मा: प्रशयेयुर्विबुद्धा:।

सर्वे धर्माश्रचाश्रमाणां हताः स्युः
क्षात्रे त्यक्ते राजधर्म पुराणे।।
शान्तिपर्व- अध्याय 63, श्लोक- 28

3 सर्वे त्यागा राज धर्मेषुं दृष्टाः
सर्वा दीज्ञा राजधर्मेषु चोक्ता:।
सर्वा विधा राजधर्मेषु युक्ता:
सर्वे लोका राजधर्म प्रविष्टा:।।
शान्तिपर्व- अध्याय 63, श्लोक- 29

4 व अहिन् पूजयतो नित्य संविभागेन पाण्डव।
सर्वतस्यस्य कौन्तेय भैश्याश्रमपदं भवेत् ।।
शान्तिपर्व- अध्याय 66, श्लोक- 7

5 वेत्ति ज्ञानंविसर्ग च निग्रहानुग्रह तथा।
यथोकत वृत्ते धीरस्य क्षेमाश्रमपदं भवेत् ।।
शान्तिपर्व- अध्याय 66, श्लोक- 6

6 आन्हिक पिंतृयज्ञांक्ष्व भूतयज्ञान् समानुषा।
कुर्वत् पार्थ विपुलान् वन्याश्रमपदं भवेत्।।
शान्तिपर्व- अध्याय 66, श्लोक- 40

7 सर्वाण्येतानि कौन्तेय विघन्ते मनुजर्षभ।
साध्वाचारप्रवृत्तानां चातुराश्रम्यकारिणाम् ।।
अकामद्वेषयुक्तस्य दण्डनीव्या युधिष्ठिर ।
समदर्शिनिश्च भूतेषु भैक्ष्याश्रमपदं भवेत् ।। रे
शान्तिपर्व- अध्याय 66, श्लोंक- 4, 5|

8 कृतस्य करणाद् राजा स्वर्णमत्यन्तमश्नुते।
त्रेताया: करणाद् राजा स्वर्ग नात्यन्तमश्नुते ।।
उद्योगपर्व- अध्याय 132 श्लोक- 18